क्या भारतीय प्रजातंत्र का भविष्य सुरक्षित है ?

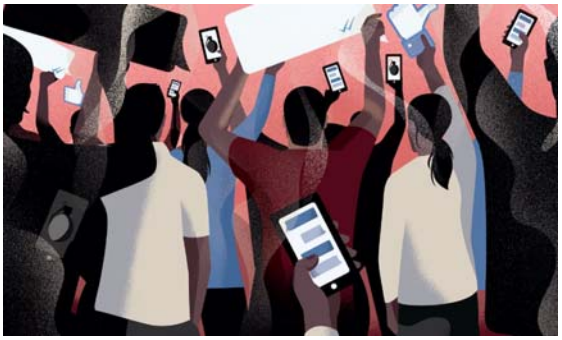

पिछले कुछ माह से देश का बौद्धिक वर्ग, सम्पन्न हो चुके आम चुनावों और नई सरकार के प्रति बड़ा आशंकित रहा है। यह वर्ग उदारवादी एलीट विचार रखता है, अंग्रेजी प्रेस के लिए लिखता है और विभिन्न टी वी चैनल व स्टेज कार्यक्रमों में होने वाली बहस में सक्रिय भागीदारी रखता है। इस वर्ग की पहली आशंका उन राजनीतिक संस्थानों के भविष्य के प्रति है, जिन्हें गणतंत्र के निर्माताओं ने बड़ी संजीदगी से पाला-पोसा है। उन्हें लगता है कि सर्वोच्च न्यायालय, सीबीआई आदि स्वायत्तता की मांग रखने वाली संस्थाओं पर अपारदर्शिता और राजनीतिक दबाव का खतरा बढ़ता जा रहा है।

दूसरा खतरा 'भारत के विचार' पर दिखाई दे रहा है। हिन्दुत्व और उसके राजनीतिक हथियार भाजपा के कारण आज भारत की बहुलवादी और समावेशी राजनीति की संस्कृति दांव लग चुकी है। कांग्रेस के 'नरम' हिन्दुत्व के स्थान पर भाजपा के 'कठोर' हिन्दुत्व ने स्थिति को बिगाड़ दिया है। यही कारण है कि भारत का उदारवादी बौद्धिक वर्ग, इसकी बदलती विचारधारा से परेशान है।

तीसरी आशंका लोकलुभावनवाद और सत्तावादी शासन के बढ़ते चरण को लेकर है। एलीट वर्ग को ऐसा लगता है कि इंदिरा गांधी के आपातकाल की तरह ही भारत का दायरा मात्र प्रक्रिया को सम्पन्न करने वाले ऐसे प्रजातंत्र के रूप में सिमटता जा रहा है, जिसमें लोकलुभावन नेताओं की खातिर ही चुनाव सम्पन्न किए जाते रहे हैं।

देश के उदारवादी बौद्धिक वर्ग की आशंकाओं से सहानुभूति रखी जा सकती है। परन्तु सच्चाई यह है कि देश का आम मतदाता इन सभी मुद्दों से बेखबर है। वह इनसे कोई सरोकार नहीं रखता है। केवल कुछ धार्मिक अल्पसंख्यकों के अलावा अन्य समुदाय भारत की बहुलवादी छवि के प्रति भी कोई संशय नहीं रखते हैं। चुनाव और देश के भविष्य से जुड़े केवल तीन मुद्दे ही उनके लिए मुख्य थे।

1. देश की अधिकांश जनता गरीबी रेखा के आसपास ही जी रही है। इस रेखा से थोड़े ही ऊपर जिन्दगी बसर करने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है, और उनको रोजगार व आजीविका का डर सताता रहता है। उन्हें यह आशंका रहती है कि रोजगार खत्म होते ही वे गरीबी रेखा से नीचे जीने को मजबूर हो जाएंगे।

यहाँ तक कि मध्य वर्ग भी सामाजिक सुरक्षा के अभाव में आर्थिक रूप से असुरक्षित महसूस करता है। रोजगार की असुरक्षा भी उनमें से एक है। यही कारण है कि अधिकांश लोग कम वेतन वाले सरकारी पदों के लिए मारा-मारी करते हैं, क्योंकि उसमें पेंशन का प्रावधान है। इसलिए देश का युवा सार्वजनिक क्षेत्र में आरक्षण दिए जाने व उसके विरूद्ध आंदोलन करने पर उतारू हो जाता है। कृषि संकट के कारण ग्रामीण जनता को अपनी आर्थिक अवस्था को लेकर आशंका बनी रहती है।

2. भारतीय राजनीति में जाति और संप्रदाय की राजनीति का बोलबाला आज भी है। बहुत से राजनीतिक दल आज भी जाति और धर्म के नाम पर ही गठबंधन करते चले जा रहे हैं। लगभग सभी राजनीतिक दल चुनावी क्षेत्र के जातीय समीकरण के अनुसार ही उम्मीदवार खड़ा करते हैं। मतदान भी उसी आधार होता रहता है। साथ ही भाजपा जैसी दक्षिणपंथी पार्टी धर्म के नाम पर लोगों को विभाजित करके वोट लेने का प्रयत्न करती हैं।

3. जात-पात, धर्म व भाषा के विभाजन से ऊपर एक ही तत्व काम करता है, और वह है-राष्ट्रवाद। कभी-कभी यह अंध-राष्ट्रीयता का रूप धारण कर लेता है। सत्ता पर अधिकार करने हेतु लोकलुभावन नेताओं ने अक्सर उग्र-राष्ट्रवाद का सहारा लिया है। इन चुनावों में इस भावना की लहर का होना महज कोई संयोग नहीं है। पाकिस्तान समर्थित आतंकी हमले के प्रतिशोध में बालाकोट हमले ने उग्र-राष्ट्रवादियों की भावनाओं को ओत-प्रोत कर दिया। सत्ताधारी दल ने इस पूरे प्रकरण को चुनावों में बड़ी चतुराई से भुनाया है।

संस्थाओं की स्वायत्तता को नजरअंदाज करना, आजीविका के साधनों पर ही ध्यान देना, जाति व संप्रदाय के प्रति सनक तथा उग्र राष्ट्रवाद का प्रचार आदि कुछ ऐसे संयोजन बने, जिन्होंने लोकलुभावनवाद के जरिए सत्तावादी शासन का रास्ता साफ कर दिया। भारतीयों की हार्दिक इच्छा थी कि इन चुनावों में उन्हें एक ऐसा 'सशक्त नेता' मिले, जो दुश्मन पाकिस्तान को सबक सिखा सके। इस इच्छा के सामने संस्थाओं का मुद्दा कोई मायने नहीं रखता था। बल्कि अधिकांश जनता तो यही कहती है कि भारत जैसी तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाले देश में उदारवादी बौद्धिक जगत की संस्थाओं की स्वायत्तता के प्रति चिंता बेमानी है, और संस्थागत निर्णय-क्षमता की पेचीदगी में ऊलझने वाले नेता के बजाय देश को दृढ़ निर्णायक क्षमता वाले नेता की ही आवश्यकता है।

यदि हम भारतीय प्रजातंत्र को इन तत्वों के आवेश में सम्पन्न हुए चुनावों के संदर्भ में देखें, तो उसका भविष्य बहुत सुरक्षित नहीं जान पड़ता है। समय-समय पर होने वाले चुनावों के रूप में एक प्रक्रियात्मक प्रजातंत्र को चालू रखा जा सकता है, परन्तु संविधान-निर्माताओं के मंतव्य से प्रेरित प्रजातंत्र की आत्मा की रक्षा करने वाले उदारवादियों की विलुप्त होती प्रजाति खतरे का संकेत देती है।

'द हिन्दू' में प्रकाशित मोहम्मद अयूब के लेख पर आधारित। 17 मई, 2019